122622 - क्या मुज़ारिब के लिए मुज़ारबा के धन से मासिक वेतन लेना जायज़ है?

प्रश्न

मुज़ारबा साझेदारी में, लाभ को वित्तदाता (फाइनेंसर) और संचालक के बीच उनके बीच सहमत प्रतिशत के अनुसार विभाजित किया जाता है। मेरा प्रश्न यह है : क्या यह शरई रूप से जायज़ है कि दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हों कि मुज़ारिब को तय लाभांश (प्रॉफिट शेयर) के अलावा हर महीने एक निश्चित वेतन (मासिक सैलरी) भी दी जाए ?

विस्तृत उत्तर

हर प्रकार की प्रशंसा और गुणगान केवल अल्लाह तआला के लिए योग्य है।.

मुज़ारबा – जिसे फिक़्ह की किताबों में "क़िराज़" कहा जाता है – एक किस्म की साझेदारी होती है, जिसमें एक पक्ष (वित्तदाता) अपनी पूंजी लगाता है और दूसरा पक्ष उस पूंजी से व्यवसाय करता है। इस प्रकार के अनुबंध (मुज़ारबा) को शरई रूप से सही ठहराने के लिए कुछ शर्तें हैं, जिनमें से एक यह है कि : मालिक (वित्तदाता) को पूंजी की गारंटी (जमानत) नहीं दी जानी चाहिए, तथा वित्तदाता को एक निश्चित राशि नहीं दी जानी चाहिए ; बल्कि दोनों पक्षों के बीच जो सहमति बनती है उसके अनुसार वह मुनाफे के एक हिस्से (प्रतिशत) का हकदार होता है, और उस पूंजी से व्यवसाय चलाने वाला कर्मचारी अपने काम के बदले में अपने और पूंजी के मालिक (वित्तदाता) के बीच तय किए गए प्रतिशत को प्राप्त करता है।

इसलिए, विद्वानों ने सर्वसम्मति से इस बात पर सहमति व्यक्त की है कि उसके लिए अपने काम के बदले में मुनाफे के अपने हिस्से के अलावा एक निश्चित राशि (वेतन) लेना जायज़ नहीं है ; क्योंकि हो सकता है कि निवेश किए गए पैसे से केवल उतना ही लाभ हो जितना वह वेतन के रूप में लेता है। इस स्थिति में उसे तो कुछ लाभ प्राप्त हो जाएगा, लेकिन पूंजी देने वाले को कुछ नहीं मिलेगा। यदि उसने परियोजना में कुछ पूंजी भी लगाई है, तो वह अपने काम के बदले में (अलग से) पारिश्रमिक प्राप्त करने का हकदार है यदि वह स्वयं काम करता है, और यही बात उसके साथी पर भी लागू होती है। हमने जो यह बात कही है, उसके बारे में हम विद्वानों के बीच कोई असहमति नहीं जानते।

ये विद्वानों के कथनों का एक समूह है जो मुज़ारबा की शर्तों को स्पष्ट करता है, और यह कि प्रश्न में मुज़ारिब को मासिक वेतन मिलने का जो उल्लेख किया गया है, वह उन चीज़ों में से एक है जो इस अनुबंध को अमान्य कर देती हैं :

(क) शैख सैय्यद साबिक़ रहिमहुल्लाह ने कहा :

"मुज़ारबा अनुबंध में निम्नलिखित शर्तें निर्धारित की गई हैं :

1-पूंजी नकद के रूप में होनी चाहिए। यदि वह सोने या चाँदी की बिना ढली हुई डली, या आभूषण या सामान के रूप में है, तो यह मान्य नहीं है। इब्नुल-मुंज़िर रहिमहुल्लाह ने कहा : जिन लोगों से हमने ज्ञान प्राप्त किया, वे सभी इस बात पर एकमत हैं कि किसी व्यक्ति के लिए यह जायज़ नहीं है कि वह किसी व्यक्ति पर अपने क़र्ज की बक़ाया राशि को मुज़ारबा (निवेश की पूंजी) में बदल दे।" उद्धरण समाप्त हुआ।

2-पूंजी की राशि ज्ञात होनी चाहिए, ताकि व्यापार में निवेश की गई पूंजी को उस लाभ से अलग किया जा सके जो समझौते के अनुसार दोनों पक्षों के बीच बाँटा जाता है।

3-कार्यकर्ता और पूँजी के मालिक के बीच लाभ अनुपात में ज्ञात होना चाहिए, जैसे आधा, एक तिहाई या एक चौथाई। क्योंकि "पैगंबर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने खैबर के लोगों के साथ समझौता किया था कि वे उपज के आधे हिस्से के बदले में ज़मीन पर काम करेंगे।" इब्नुल-मुंज़िर रहिमहुल्लाह ने कहा : जिन लोगों से हमने ज्ञान प्राप्त किया, वे सभी इस बात पर एकमत हैं कि यदि भागीदारों में से एक या दोनों अपने लिए कुछ ज्ञात दिरहम (यानी एक निश्चित राशि) निर्धारित कर लेते हैं, तो मुज़ारबा का अनुबंध अमान्य हो जाता है।" उद्धरण समाप्त।

इसका कारण : यह है कि यदि उनमें से किसी एक के लिए एक विशिष्ट राशि निर्धारित की जाती है, तो हो सकता है कि लाभ उस राशि से अधिक न हो। ऐसी स्थिति में जिसके लिए शर्त लगाई गई थी, वह इसे ले लेगा, और दूसरे को कुछ भी नहीं मिलेगा। यह मुज़ारबा अनुबंध के उद्देश्य के विपरीत है, जिसका उद्देश्य यह है कि दोनों पक्षों को लाभ मिलना चाहिए।

4-मुज़ारबा अनुबंध प्रतिबंधों से मुक्त होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि पूँजी के स्वामी को कार्यकर्ता को किसी विशिष्ट देश में, या किसी विशिष्ट वस्तु में, या एक समय के बजाय दूसरे समय में व्यापार करने, या केवल एक विशिष्ट व्यक्ति के साथ व्यवहार करने, या ऐसी किसी अन्य शर्त तक सीमित नहीं रखना चाहिए। क्योंकि प्रतिबंध निर्धारित करने से अक्सर अनुबंध का उद्देश्य, जो कि लाभ कमाना है, विफल हो जाता है।

इसलिए ऐसी कोई शर्त नहीं लगानी चाहिए, अन्यथा मुज़ारबा अनुबंध अमान्य हो जाएगा। यह इमाम मालिक और शाफेई रहिमहुमल्लाह का मत है।

जबकि इमाम अबू हनीफा और अहमद रहिमहुमल्लाह ने यह शर्त नहीं रखी है। उन्होंने कहा : जिस तरह मुज़ारबा अनुबंध तब मान्य होता है जब उस पर कोई प्रतिबंध न हो, उसी तरह वह तब भी वैध होता है जब उस पर कोई प्रतिबंध हो।

मुज़ारबा अनुबंध की शर्तों में से उसकी अवधि निर्धारित करना नहीं है, क्योंकि यह एक अनुमेय अनुबंध है जिसे किसी भी समय रद्द किया जा सकता है।

इसी तरह उसकी शर्तों में से यह भी नहीं है कि यह एक मुसलमान और दूसरे मुसलमान के बीच होना चाहिए ; बल्कि यह एक मुसलमान और एक जिम्मी [मुस्लिम शासन के तहत रहने वाला गैर-मुस्लिम] के बीच भी हो सकता है।" (फ़िक़्हुस-सुन्नह (3/205-207)

(ख)- कासानी अल-हनफ़ी रहिमहुल्लाह ने मुज़ारबा अनुबंध की शर्तों की व्याख्या करते हुए कहा :

"इन शर्तों में से एक यह है कि मुज़ारिब (कार्यकर्ता) और पूंजी के मालिक (वित्तपोषक) में से प्रत्येक के लिए मुनाफ़े का निर्धारित हिस्सा एक साझा हिस्सा - आधा या एक तिहाई या एक चौथाई – होना चाहिए। यदि वे एक निश्चित राशि की शर्त लगाते हैं, जैसे कि यह शर्त लगाना कि उनमें से एक को लाभ का एक सौ दिरहम, या उससे कम, या अधिक मिलेगा और शेष दूसरे को मिलेगा : तो यह जायज़ नहीं है, और मुज़ारबा अमान्य है, क्योंकि मुज़ारबा एक प्रकार की साझेदारी है, जिसमें भागीदार मुनाफ़े को साझा करते हैं। लेकिन यह शर्त लाभ में साझेदारी को समाप्त कर देती है। क्योंकि ऐसी संभावना है कि मुज़ारिब को केवल इस निर्दिष्ट राशि का ही लाभ हो, (इस राशि से अधिक लाभ न हो), ऐसी स्थिति में यह उनमें से एक के लिए हो जाएगा, और दूसरे के लिए कुछ नहीं बचेगा। इसलिए, अब साझेदारी स्थापित नहीं होगी, और इस लेन-देन को मुज़ारबा नहीं माना जाएगा। यही बात तब भी लागू होती है यदि वे यह शर्त लगाते हैं कि उनमें से एक को आधा, या एक तिहाई और साथ ही एक सौ दिरहम मिलना चाहिए, या एक सौ दिरहम को छोड़कर (मिलना चाहिए), तो यह जायज़ नहीं है ; क्योंकि मुज़ारबा एक प्रकार की साझेदारी है जिसमें भागीदार लाभ में साझीदार होते हैं, लेकिन यह एक ऐसी शर्त है जो लाभ में साझेदारी को समाप्त कर देती है, क्योंकि ऐसा संभव है कि मुज़ारिब केवल वही निश्चित राशि लाभ के रूप में कमाए जिसका उल्लेख किया गया है, और वह पूरी की पूरी एक पक्ष को मिल जाए, और दूसरे को कुछ भी न मिले। इस स्थिति में साझेदारी पूरी नहीं होती, और यह लेन-देन 'मुज़ारबा' नहीं कहलाएगा।" (बदाएउस-सनाए', 6/85, 86)

(ग) इमाम शीराज़ी अश-शाफ़ेई (रहिमहुल्लाह) ने कहा :

"उनमें से किसी एक के लिए यह शर्त रखना जायज़ नहीं है कि उसे मुनाफ़े का कुछ निश्चित दिरहम मिलेगा, और फिर जो कुछ बचे वह दोनों के बीच बाँटा जाएगा। क्योंकि संभव है कि वह निश्चित दिरहम ही न हासिल हो, तो उस व्यक्ति का हक़ ही खत्म हो जाएगा। और संभव है कि सिर्फ वही निश्चित दिरहम मिले और कुछ न बचे, तो दूसरे व्यक्ति का हक़ खत्म हो जाएगा।" (देखें : अल-मजमू' शर्ह अल-मुहज़्ज़ब (14/366)

निष्कर्ष यह कि : काम करने वाले मुज़ारिब के लिए एक निश्चित मासिक वेतन रखना जायज़ नहीं है। उसे लाभ का केवल वही अनुपात (percentage) मिलेगा जिस पर वह और पूँजी का मालिक सहमत हुए हैं।

और अल्लाह तआला ही सबसे अधिक ज्ञान रखता है।